॥ श्रीहरिः ॥ 225

गजेन्द्रमोक्ष

परिचय

श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें गजेन्द्रमोक्षकी कथा है। द्वितीय अध्यायमें ग्राहके साथ गजेन्द्रके युद्धका वर्णन है, तृतीय अध्यायमें गजेन्द्रकृत भगवान्के स्तवन और गजेन्द्रमोक्षका प्रसंग है और चतुर्थ अध्यायमें गज-ग्राहके पूर्वजन्मका इतिहास है। श्रीमद्भागवतमें गजेन्द्रमोक्ष-आख्यानके पाठका माहात्म्य बतलाते हुए इसको स्वर्ग तथा यशदायक, कलियुगके समस्त पापोंका नाशक, दुःस्वप्ननाशक और श्रेयःसाधक कहा गया है। तृतीय अध्यायका स्तवन बहुत ही उपादेय है। इसकी भाषा और भाव सिद्धान्तके प्रतिपादक और बहुत ही मनोहर हैं। भावके साथ स्तुति करते-करते मनुष्य तन्मय हो जाता है। महामना श्रीमालवीयजी महाराज कहा करते थे कि गजेन्द्रकृत इस स्तवनका आर्तभावसे पाठ करनेपर

लौकिक-पारमार्थिक महान् संकटों और विघ्नोंसे छुटकारा मिल जाता है और निष्कामभाव होनेपर अज्ञानके बन्धनसे छूटकर पुरुष भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। स्वयं भगवान्‌का वचन है कि 'जो रात्रिके शेषमें (ब्राह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें) जागकर इस स्तोत्रके द्वारा मेरा स्तवन करते हैं, उन्हें मैं मृत्युके समय निर्मल मति (अपनी स्मृति) प्रदान करता हूँ।' और 'अन्ते मतिः सा गतिः' के अनुसार उसे निश्चय ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है तथा इस प्रकार वह सदाके लिये जन्म-मृत्युके बन्धनसे छूट जाता है। संस्कृत न जाननेवाले भाई-बहिनोंके लिये इस स्तवनका सुन्दर भावार्थ लिख दिया गया है। आशा है कि पाठक इससे लाभ उठावेंगे।

पौष १
संवत् २०११

हनुमानप्रसाद पोद्दार

ॐ

श्रीमद्भागवतान्तर्गत

गजेन्द्रकृत भगवान्‌का स्तवन

गजेन्द्रमोक्ष

श्रीशुक उवाच=श्रीशुकदेवजीने कहा—

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्॥ १ ॥

बुद्धिके द्वारा पिछले अध्यायमें वर्णित रीतिसे निश्चय करके तथा मनको हृदयदेशमें स्थिर करके वह गजराज अपने पूर्वजन्ममें सीखकर कण्ठस्थ किये हुए सर्वश्रेष्ठ एवं बार-बार दोहरानेयोग्य निम्नलिखित स्तोत्रका मन-ही-मन पाठ करने लगा॥ १॥

गजेन्द्र उवाच=गजराजने (मन-ही-मन) कहा—

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि॥ २ ॥

जिनके प्रवेश करनेपर (जिनकी चेतनताको पाकर) ये जड शरीर और मन आदि भी चेतन बन जाते हैं (चेतनकी भाँति व्यवहार करने लगते हैं), 'ओम्' शब्दके द्वारा लक्षित तथा सम्पूर्ण शरीरोंमें प्रकृति एवं पुरुषरूपसे प्रविष्ट हुए उन सर्वसमर्थ परमेश्वरको हम मन-ही-मन नमन करते हैं॥ २॥

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥ ३ ॥

जिनके सहारे यह विश्व टिका है, जिनसे यह निकला है, जिन्होंने इसकी रचना की है और जो स्वयं ही इसके रूपमें प्रकट हैं—फिर भी जो इस दृश्य जगत्से एवं उसकी कारणभूता प्रकृतिसे सर्वथा परे (विलक्षण) एवं श्रेष्ठ हैं—उन अपने-आप—बिना किसी कारणके—बने हुए भगवान्‌की मैं शरण लेता हूँ॥ ३॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम्।

अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

अपनी संकल्प-शक्तिके द्वारा अपने ही स्वरूपमें रचे हुए और इसीलिये सृष्टिकालमें प्रकट और प्रलयकालमें उसी प्रकार अप्रकट रहनेवाले इस शास्त्रप्रसिद्ध कार्य-कारणरूप जगत्को जो अकुण्ठित-दृष्टि होनेके कारण साक्षीरूपसे देखते रहते हैं—उनसे लिप्त नहीं होते, वे चक्षु आदि प्रकाशकोंके भी परम प्रकाशक प्रभु मेरी रक्षा करें॥ ४॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु।
तमस्तदाऽऽसीद् गहनं गभीरं
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥

समयके प्रवाहसे सम्पूर्ण लोकोंके एवं ब्रह्मादि लोकपालोंके पंचभूतोंमें प्रवेश

कर जानेपर तथा पंचभूतोंसे लेकर महत्तत्त्वपर्यन्त सम्पूर्ण कारणोंके उनकी परमकारणरूपा प्रकृतिमें लीन हो जानेपर उस समय दुर्ज्ञेय तथा अपार अन्धकाररूप प्रकृति ही बच रही थी। उस अन्धकारके परे अपने परम धाममें जो सर्वव्यापक भगवान् सब ओर प्रकाशित रहते हैं, वे प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु॥ ६ ॥

भिन्न-भिन्न रूपोंमें नाट्य करनेवाले अभिनेताके वास्तविक स्वरूपको जिस प्रकार साधारण दर्शक नहीं जान पाते, उसी प्रकार सत्त्वप्रधान देवता अथवा ऋषि भी जिनके स्वरूपको नहीं जानते, फिर दूसरा साधारण जीव तो कौन जान अथवा वर्णन कर सकता है—वे दुर्गम चरित्रवाले प्रभु मेरी रक्षा करें॥ ६॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं
विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः॥ ७॥

आसक्तिसे सर्वथा छूटे हुए, सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मबुद्धि रखनेवाले, सबके अकारण हितू एवं अतिशय साधु-स्वभाव मुनिगण जिनके परम मंगलमय स्वरूपका साक्षात्कार करनेकी इच्छासे वनमें रहकर अखण्ड ब्रह्मचर्य आदि अलौकिक व्रतोंका पालन करते हैं, वे प्रभु ही मेरी गति हैं॥ ७॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा
न नामरूपे गुणदोष एव वा।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति॥ ८॥

जिनका हमारी तरह कर्मवश न तो जन्म होता है और न जिनके द्वारा अहंकारप्रेरित कर्म ही होते हैं,जिनके निर्गुण स्वरूपका न तो कोई नाम है न रूप ही, फिर भी जो समयानुसार जगत्‌की सृष्टि एवं प्रलय (संहार)-के लिये स्वेच्छासे जन्म आदिको स्वीकार करते हैं॥ ८॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे॥ ९ ॥

उन अनन्तशक्तिसम्पन्न परब्रह्म परमेश्वरको नमस्कार है। उन प्राकृत आकाररहित एवं अनेकों आकारवाले अद्भुतकर्मा भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है॥ ९॥

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि॥ १०॥

स्वयंप्रकाश एवं सबके साक्षी परमात्माको नमस्कार है। उन प्रभुको, जो मन,

वाणी एवं चित्तवृत्तियोंसे भी सर्वथा परे हैं, बार-बार नमस्कार है॥ १०॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे॥ ११॥

विवेकी पुरुषके द्वारा सत्त्वगुणविशिष्ट निवृत्तिधर्मके आचरणसे प्राप्त होने योग्य, मोक्ष-सुखके देनेवाले तथा मोक्ष-सुखकी अनुभूतिरूप प्रभुको नमस्कार है॥ ११॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च॥ १२॥

सत्त्वगुणको स्वीकार करके शान्त, रजोगुणको स्वीकार करके घोर एवं तमोगुणको स्वीकार करके मूढ-से प्रतीत होनेवाले, भेदरहित; अतएव सदा समभावसे स्थित ज्ञानघन प्रभुको नमस्कार है॥ १२॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः॥ १३॥

शरीर, इन्द्रिय आदिके समुदायरूप सम्पूर्ण पिण्डोंके ज्ञाता, सबके स्वामी एवं साक्षीरूप आपको नमस्कार है। सबके अन्तर्यामी, प्रकृतिके भी परम कारण, किंतु स्वयं कारणरहित प्रभुको नमस्कार है॥ १३॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः॥ १४॥

सम्पूर्ण इन्द्रियों एवं उनके विषयोंके ज्ञाता, समस्त प्रतीतियोंके कारणरूप, सम्पूर्ण जड-प्रपंच एवं सबकी मूलभूता अविद्याके द्वारा सूचित होनेवाले तथा सम्पूर्ण विषयोंमें अविद्यारूपसे भासनेवाले आपको नमस्कार है॥ १४॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
निष्कारणायाद्भुतकारणाय।

सर्वागमाम्नायमहार्णवाय
नमोऽपवर्गाय परायणाय॥ १५ ॥

सबके कारण किंतु स्वयं कारणरहित तथा कारण होनेपर भी परिणामरहित होनेके कारण अन्य कारणोंसे विलक्षण कारण आपको बारम्बार नमस्कार है। सम्पूर्ण वेदों एवं शास्त्रोंके परम तात्पर्य, मोक्षरूप एवं श्रेष्ठ पुरुषोंकी परम गति भगवान्‌को नमस्कार है॥ १५॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि॥ १६ ॥

जो त्रिगुणरूप काष्ठोंमें छिपे हुए ज्ञानमय अग्नि हैं, उक्त गुणोंमें हलचल होनेपर जिनके मनमें सृष्टि रचनेकी बाह्यवृत्ति जाग्रत् हो जाती है तथा आत्मतत्त्वकी

भावनाके द्वारा विधि-निषेधरूप शास्त्रसे ऊपर उठे हुए ज्ञानी महात्माओंमें जो स्वयं प्रकाशित रहते हैं, उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय
मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते॥ १७॥

मुझ-जैसे शरणागत पशुतुल्य (अविद्याग्रस्त) जीवकी अविद्यारूप फाँसीको सदाके लिये पूर्णरूपसे काट देनेवाले अत्यधिक दयालु एवं दया करनेमें कभी आलस्य न करनेवाले नित्यमुक्त प्रभुको नमस्कार है। अपने अंशसे सम्पूर्ण जीवोंके मनमें अन्तर्यामीरूपसे प्रकट रहनेवाले सर्वनियन्ता अनन्त परमात्मा आपको नमस्कार है॥ १७॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-
र्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय।

मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय॥ १८॥

शरीर, पुत्र, मित्र, घर, सम्पत्ति एवं कुटुम्बियोंमें आसक्त लोगोंके द्वारा कठिनतासे प्राप्त होनेवाले तथा मुक्त पुरुषोंके द्वारा अपने हृदयमें निरन्तर चिन्तित ज्ञानस्वरूप, सर्वसमर्थ भगवान्‌को नमस्कार है॥ १८॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम्॥ १९॥

जिन्हें धर्म, अभिलषित भोग, धन एवं मोक्षकी कामनासे भजनेवाले लोग अपनी मनचाही गति पा लेते हैं, अपितु जो उन्हें अन्य प्रकारके अयाचित भोग एवं अविनाशी पार्षद शरीर भी देते हैं, वे अतिशय दयालु प्रभु मुझे इस

विपत्तिसे सदाके लिये उबार लें॥ १९॥

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः॥ २०॥

जिनके अनन्य भक्त—जो वस्तुतः एकमात्र उन भगवान्के ही शरण हैं—धर्म, अर्थ आदि किसी भी पदार्थको नहीं चाहते, अपितु उन्हींके परम मंगलमय एवं अत्यन्त विलक्षण चरित्रोंका गान करते हुए आनन्दके समुद्रमें गोते लगाते रहते हैं॥ २०॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम्।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे॥ २१॥

उन अविनाशी, सर्वव्यापक, सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्मादिके भी नियामक, अभक्तोंके लिये अप्रकट होनेपर भी भक्तियोगद्वारा प्राप्त करनेयोग्य, अत्यन्त निकट होनेपर भी मायाके आवरणके कारण अत्यन्त दूर प्रतीत होनेवाले, इन्द्रियोंके द्वारा अगम्य तथा अत्यन्त दुर्विज्ञेय, अन्तरहित किंतु सबके आदिकारण एवं सब ओरसे परिपूर्ण उन भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ॥ २१॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः।
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः॥ २२॥

ब्रह्मादि समस्त देवता, चारों वेद तथा सम्पूर्ण चराचर जीव नाम और आकृतिके भेदसे जिनके अत्यन्त क्षुद्र अंशके द्वारा रचे गये हैं॥ २२॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः॥ २३॥

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्निसे लपटें तथा सूर्यसे किरणें बार-बार निकलती हैं और पुनः अपने कारणमें लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और नाना योनियोंके शरीर—यह गुणमय प्रपंच जिन स्वयंप्रकाश परमात्मासे प्रकट होता है और पुनः उन्हींमें लीन हो जाता है॥ २३॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्
निषेधशेषो जयतादशेषः॥ २४॥

वे भगवान् वास्तवमें न तो देवता हैं न असुर, न मनुष्य हैं न तिर्यक् (मनुष्यसे नीची—पशु, पक्षी आदि किसी) योनिके प्राणी हैं। न वे स्त्री हैं न पुरुष और न नपुंसक ही हैं। न वे ऐसे कोई जीव हैं, जिनका इन तीनों ही श्रेणियोंमें समावेश न हो सके। न वे गुण हैं न कर्म, न कार्य हैं न तो कारण ही। सबका निषेध

हो जानेपर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरूप है और वे ही सब कुछ हैं। ऐसे भगवान् मेरे उद्धारके लिये आविर्भूत हों॥ २४॥

जिजीविषे नाहमिहामुया कि -
मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-
स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम्॥ २५॥

मैं इस ग्राहके चंगुलसे छूटकर जीवित रहना नहीं चाहता; क्योंकि भीतर और बाहर—सब ओरसे अज्ञानके द्वारा ढके हुए इस हाथीके शरीरसे मुझे क्या लेना है। मैं तो आत्माके प्रकाशको ढक देनेवाले उस अज्ञानकी निवृत्ति चाहता हूँ, जिसका कालक्रमसे अपने-आप नाश नहीं होता, अपितु भगवान्की दयासे अथवा ज्ञानके उदयसे होता है॥ २५॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम्।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम्॥ २६॥

इस प्रकार मोक्षका अभिलाषी मैं विश्वके रचयिता, स्वयं विश्वके रूपमें प्रकट तथा विश्वसे सर्वथा परे, विश्वको खिलौना बनाकर खेलनेवाले, विश्वमें आत्मारूपसे व्याप्त, अजन्मा, सर्वव्यापक एवं प्राप्तव्य वस्तुओंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीभगवान्‌को केवल प्रणाम ही करता हूँ—उनकी शरणमें हूँ॥ २६॥

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम्॥ २७॥

जिन्होंने भगवद्भक्तिरूप योगके द्वारा कर्मोंको जला डाला है, वे योगी लोग उसी योगके द्वारा शुद्ध किये हुए अपने हृदयमें जिन्हें प्रकट हुआ देखते हैं, उन योगेश्वरभगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ॥ २७॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने॥ २८॥

जिनकी त्रिगुणात्मक (सत्त्व-रज-तमरूप) शक्तियोंका रागरूप वेग असह्य है, जो सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयरूपमें प्रतीत हो रहे हैं, तथापि जिनकी इन्द्रियाँ विषयोंमें ही रची-पची रहती हैं—ऐसे लोगोंको जिनका मार्ग भी मिलना असम्भव है, उन शरणागतरक्षक एवं अपार शक्तिशाली आपको बार-बार नमस्कार है॥ २८॥

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम्।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम्॥ २९॥

जिनकी अविद्या नामक शक्तिके कार्यरूप अहंकारसे ढके हुए अपने स्वरूपको यह जीव जान नहीं पाता, उन अपार महिमावाले भगवान्‌की मैं शरण आया हूँ॥ २९॥

श्रीशुक उवाच=श्रीशुकदेवजीने कहा—

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः।

नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्॥ ३०॥

जिसने पूर्वोक्त प्रकारसे भगवान्‌के भेदरहित निराकार स्वरूपका वर्णन किया था, उस गजराजके समीप जब ब्रह्मा आदि कोई भी देवता नहीं आये, जो भिन्न-भिन्न प्रकारके विशिष्ट विग्रहोंको ही अपना स्वरूप मानते हैं, तब साक्षात् श्रीहरि—जो सबके आत्मा होनेके कारण सर्वदेवस्वरूप हैं—वहाँ प्रकट हो गये॥ ३०॥

तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः॥ ३१॥

उपर्युक्त गजराजको उस प्रकार दुःखी देखकर तथा उसके द्वारा पढ़ी हुई

स्तुतिको सुनकर सुदर्शन-चक्रधारी जगदाधार भगवान् इच्छानुरूप वेगवाले गरुड़जीकी पीठपर सवार हो स्तवन करते हुए देवताओंके साथ तत्काल उस स्थानपर पहुँच गये, जहाँ वह हाथी था॥ ३१॥

सोऽन्तस्सरस्युरुबलेन गृहीत आर्त्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते॥ ३२॥

सरोवरके भीतर महाबली ग्राहके द्वारा पकड़े जाकर दुःखी हुए उस हाथीने आकाशमें गरुड़की पीठपर चक्रको उठाये हुए भगवान् श्रीहरिको देखकर अपनी सूँड़को—जिसमें उसने [पूजाके लिये] कमलका एक फूल ले रखा था—ऊपर उठाया और बड़ी ही कठिनतासे 'सर्वपूज्य भगवान् नारायण! आपको

प्रणाम है', यह वाक्य कहा॥ ३२॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
सम्पश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम्॥ ३३॥

उसे पीड़ित देखकर अजन्मा श्रीहरि एकाएक गरुड़को छोड़कर नीचे झीलपर उतर आये। वे दयासे प्रेरित हो ग्राहसहित उस गजराजको तत्काल झीलसे बाहर निकाल लाये और देवताओंके देखते-देखते चक्रसे उस ग्राहका मुँह चीरकर उसके चंगुलसे हाथीको उबार लिया॥ ३३॥

गजेन्द्रमोक्षका

हिंदी–पद्यमें भावानुवाद

श्रीशुकदेवजीने कहा—

यों निश्चय कर व्यवसित मतिसे, मन प्रथम हृदयसे जोड़ लिया।
फिर पूर्वजन्ममें अनुशिक्षित, इस परम मन्त्रका जाप किया॥ १॥

गजेन्द्र बोला—

मनसे है ॐ नमन प्रभुको, जिससे यह जड़ चेतन बनता।
जो परम पुरुष, जो आदि बीज, सर्वोपरि जिसकी ईश्वरता॥ २॥
जिसमें, जिससे, जिसके द्वारा जगकी सत्ता, जो स्वयं यही।
जो कारण–कार्य—परे सबके, जो निजभू, आज शरण्य वही॥ ३॥
अपनेमें ही अपनी मायासे ही रचे हुए संसार।
को हो कभी प्रकट, अन्तर्हित, कभी देखता उभय प्रकार॥

जो अविद्धदृक् साक्षी बनकर, जो परसे भी सदा परे।
है जो स्वयं प्रकाशक अपना, मेरी रक्षा आज करे॥ ४॥
लोक, लोकपालोंका, इन सबके कारणका भी संहार।
कर देता सम्पूर्ण रूपसे महाकालका कठिन कुठार॥
अन्धकार तब छा जाता है, एक गहन, गंभीर, अपार।
उसके पार चमकते जो विभु, वे लें मुझको आज सँभार॥ ५॥
देवता तथा ऋषि लोग नहीं जिनके स्वरूपको जान सके।
फिर कौन दूसरा जीव भला, जो उनको कभी बखान सके ॥
जो करते नाना रूप धरे, लीला अनेक नटतुल्य रचा।
है दुर्गम जिनका चरित–सिंधु, वे महापुरुष लें मुझे बचा॥ ६॥
जो साधुस्वभावी, सर्वसुहृद् वे मुनिगण भी सब संग छोड़।

बस केवलमात्र आत्माका सब भूतोंसे सम्बन्ध जोड़॥
जिनके मंगलमय पद-दर्शनकी इच्छासे वनमें पालन।
करते अलोक व्रतका अखण्ड, वे ही हैं मेरे अवलम्बन॥ ७ ॥
जिसका होता है जन्म नहीं, केवल भ्रमसे होता प्रतीत।
जो कर्म और गुण-दोष तथा जो नामरूपसे है अतीत॥
रचनी होती जब सृष्टि किंतु, जब करना होता उसका लय।
तब अंगीकृत कर लेता है इन धर्मोंको वह यथासमय॥ ८ ॥
उस परमेश्वर, उस परमब्रह्म, उस अमित-शक्तिको नमस्कार।
जो अद्भुतकर्मा, जो अरूप, फिर भी लेता बहुरूप धार॥ ९ ॥
परमात्मा जो सबका साक्षी, उस आत्मदीपको नमस्कार।
जिसतक जानेमें पथमें ही, जाते वाणी-मन-चित्त हार॥ १०॥

बन सतोगुणी सुनिवृत्तिमार्गसे पाते जिसको विद्वज्जन।
जो सुखस्वरूप निर्वाणजनित, जो मोक्षधामपति, उसे नमन॥ ११ ॥
जो शान्त, घोर, जडरूप प्रकट होते तीनों गुण धर्म धार।
उन सौम्य, ज्ञानघन, निर्विशेषको नमस्कार है, नमस्कार॥ १२ ॥
सबके स्वामी, सबके साक्षी, क्षेत्रज्ञ! तुझे है नमस्कार।
हे आत्ममूल, हे मूलप्रकृति, हे पुरुष, नमस्ते बार-बार॥ १३ ॥
इन्द्रिय-विषयोंका जो द्रष्टा, इन्द्रियानुभवका जो कारन।
जो व्यक्त असत्‌की छायामें, हे सदाभास! है तुझे नमन॥ १४ ॥
सबके कारण, निष्कारण भी, हे विकृतिरहित सबके कारण।
तेरे चरणोंमें बार-बार है नमस्कार मेरा अर्पण॥
सब श्रुतियों, शास्त्रोंका सारे, जो केवल एक अगाध निलय।

उस मोक्षरूपको नमस्कार, जिसमें पाते सज्जन आश्रय॥ १५॥
जो ज्ञानरूपसे छिपा गुणोंके बीच, काष्ठमें यथा अनल।
अभिव्यक्ति चाहता मन जिसका, जिस समय गुणोंमें हो हलचल॥
मैं नमस्कार करता उसको, जो स्वयं प्रकाशित है उनमें।
आत्मालोचन करके न रहे, जो विधि-निषेधके बन्धनमें॥ १६॥
जो मेरे-जैसे शरणागत जीवोंका हरता है बन्धन।
उस मुक्त, अमित करुणावाले, आलस्यरहितके लिये नमन॥
सब जीवोंके मनके भीतर, जो है प्रतीत प्रत्यक्चेतन।
बन अन्तर्यामी, हे भगवन्! हे अपरिछिन्न! है तुझे नमन॥ १७॥
जिसका मिलना है सहज नहीं, उन लोगोंको, जो सदा रमें।
लोगोंमें, धनमें, मित्रोंमें, अपनेमें, पुत्रोंमें, घरमें॥

जो निर्गुण, जिसका हृदय-बीच जन अनासक्त करते चिन्तन।
हे ज्ञानरूप! हे परमेश्वर! हे भगवन्! मेरा तुझे नमन॥ १८ ॥
जिनको विमोक्ष-धर्मार्थ कामकी इच्छावाले जन भजकर।
वाञ्छित फलको पा लेते हैं; जो देते तथा अयाचित वर॥
भी अपने भजनेवालोंको, कर देते उनकी देह अमर।
लें वे ही आज उबार मुझे, इस संकटसे करुणासागर॥ १९ ॥
जिनके अनन्य जन धर्म, अर्थ या काम-मोक्ष, पुरुषार्थ-सकल।
की चाह नहीं रखते मनमें, जिनकी बस, इतनी रुचि केवल॥
अत्यन्त विलक्षण श्रीहरिके जो चरित परम मंगल, सुन्दर।
आनन्द-सिन्धुमें मग्न रहें, गा-गाकर उनको निसि-वासर॥ २० ॥
जो अविनाशी, जो सर्वव्याप्त, सबका स्वामी, सबके ऊपर।

अव्यक्त, किंतु अध्यात्ममार्गके पथिकोंको जो है गोचर॥
इन्द्रियातीत, अति दूर-सदृश जो सूक्ष्म तथा जो है अपार।
कर-कर बखान मैं आज रहा, उस आदि पुरुषको ही पुकार॥ २१ ॥
उत्पन्न वेद, ब्रह्मादि देव, ये लोक सकल, चर और अचर।
होते जिसकी बस, स्वल्प कलासे नाना नाम-रूप धरकर॥ २२ ॥
ज्यों ज्वलित अग्निसे चिनगारी, ज्यों रविसे किरणें निकल-निकल।
फिर लौट उन्हींमें जाती हैं, गुणकृत प्रपंच उस भाँति सकल॥
मन, बुद्धि, सभी इन्द्रियों तथा सब विविध योनियोंवाले तन।
का जिससे प्रकटन हो जिसमें, हो जाता है पुनरावर्त्तन॥ २३ ॥
वह नहीं देव, वह असुर नहीं, वह नहीं मर्त्य, वह क्लीब नहीं॥
वह कारण अथवा कार्य नहीं गुण, कर्म, पुरुष या जीव नहीं।

सबका कर देनेपर निषेध जो कुछ रह जाता शेष, वही।
जो है अशेष हो प्रकट आज, हर ले मेरा सब क्लेश वही॥ २४॥
कुछ चाह न जीवित रहनेकी, जो तमसावृत बाहर-भीतर—
ऐसे इस हाथीके तनको, क्या भला, करूँगा मैं रखकर?
इच्छा इतनी—बन्धन जिसका सुदृढ़ न कालसे भी टूटे।
आत्माकी जिससे ज्योति ढँकी, अज्ञान वही मेरा छूटे॥ २५॥
उस विश्वसृजक, अज, विश्वरूप, जगसे बाहर जग-सूत्रधार।
विश्वात्मा, ब्रह्म, परमपदको, इस मोक्षार्थीका नमस्कार॥ २६॥
निज कर्म-जालको भक्तियोगसे जला, योग परिशुद्ध हृदय।
में जिसे देखते योगीजन, योगेश्वर प्रति मैं नत सविनय॥ २७॥
हो सकता सहन नहीं जिसकी त्रिगुणात्म-शक्तिका वेग प्रबल।

जो होता तथा प्रतीत धरे इन्द्रिय-विषयोंका रूप सकल॥
जो दुर्गम उन्हें मलिन विषयोंमें जो कि इन्द्रियोंके उलझे।
शरणागत-पालक, अमित-शक्ति हे! बारंबार प्रणाम तुझे॥ २८॥
अनभिज्ञ जीव जिसकी माया, कृत अहंकार द्वारा उपहत।
निज आत्मासे मैं उस दुरन्त महिमामय प्रभुके शरणागत॥ २९॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—

यह निराकार-वपु भेदरहितकी स्तुति गजेन्द्र-वर्णित सुनकर।
आकृति-विशेषवाले रूपोंके अभिमानी ब्रह्मादि अमर॥
आये जब उसके पास नहीं; तब श्रीहरि जो आत्मा घट-घट।
के होनेसे सब देवरूप, हो गये वहाँ उस काल प्रकट॥ ३०॥
वे देख उसे इस भाँति दुखी, उसका यह आर्त्तस्तव सुनकर।

मन-सी गतिवाले पक्षिराजकी चढ़े पीठ ऊपर सत्वर॥
आ पहुँचे, था गजराज जहाँ, निज करमें चक्र उठाये थे।
तब जगनिवासके साथ-साथ, सुर भी स्तुति करते आये थे॥ ३१॥
अतिशय बलशाली ग्राह जिसे, था पकड़े हुए सरोवरमें।
गजराज देखकर श्रीहरिको, आसीन गरुड़पर अम्बरमें॥
खर चक्र हाथमें लिये हुए, वह दुखिया उठा कमल करमें।
'हे विश्व-वन्द्य प्रभु! नमस्कार' यह बोल उठा पीड़ित स्वरमें॥ ३२॥
पीड़ामें उसको पड़ा देख, भगवान् अजन्मा पड़े उतर।
अविलम्ब गरुड़से फिर कृपया झट खींच सरोवरसे बाहर॥
कर गजको मकर-सहित, उसका मुख चक्रधारसे चीर दिया।
देखते-देखते सुरगणके हरिने गजेन्द्रको छुड़ा लिया॥ ३३॥

~~○~~